जायसी का काव्य एवं सांस्कृतिक मूल्य

डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र

जायसी के काव्य सौंदर्य के संबंध में सामान्यत: इश्क मिजाजी से इश्क हकीकी की बात कही जाती है। इसे हम नकार भी नहीं सकते। कालांतर में विजयदेव शाही, रघुवंश, शिवकुमार मिश्र, प्रेमशंकर और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने अपने-अपने ढंग से जायसी के काव्य में अंतर्निहित लोकसंस्कृति, प्रकृति, काव्यदृष्टि एवं शिल्पदृष्टि आदि का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया। जायसी के काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों की तलाश के लिए 'पद्मावत' को ही यहां केंद्र में रखा गया है। संस्कृति की अवधारणा पर प्रकाश डालना बड़ा मुश्किल है क्योंकि इस पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। संस्कृति का संबंध मनुष्य से बहुत पुरातन है। एक तरह से कह सकते हैं कि दोनों का जन्म साथ-साथ ही हुआ और कालांतर में युग परिवेश के साथ दोनों में बदलाव भी आता गया परंतु कतिपय बातें ऐसी हैं जो कि इस वैज्ञानिक युग में भी हमें जोड़े हैं। संस्कृति वह सामान्य तौर-तरीका है जिसके अनुसार मनुष्य रहता सोचता और कार्य करता है। डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने अपने आलेख 'सांस्कृतिक मूल्य और कलात्मक परंपराएँ' में संस्कृति के संबंध में टर्नर की परिभाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'संस्कृति' की व्याप्ति मानवीय सभ्यता के इतिहास सी प्राचीन, गतिशील और रसवंती है। स्थूल रूप से इसके क्षेत्रों में सामान्यत: कला, धर्म और साहित्य आते हैं। अन्य तत्वों का भी समावेश होता हैं, जैसे जीवन यापन के स्तर, परिवेशों के संस्कार जीवन के प्रति मौलिक दृष्टिकोण, आर्थिक अवस्थाओं के अनुरूप समाज आदि। इसके क्षेत्र के अधिक व्यापक प्रसार में संस्कृति का आधुनिकतम अर्थ आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्था राजनीतिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठन और चिंतन तथा उपलब्धियों की सामान्य वृत्तियां आदि हो सकती हैं। टर्नर की इस व्याख्या में कला, साहित्य, विज्ञान, अनुसंधान, दर्शन और धर्म की संस्कृति के प्रथम मूल्य हो जाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा में जीवन-जगत की वे तमाम, बातें आ जाती हैं जिनके अंतर्गत हम प्रकृति एवं लोक के सान्निध्य में रहते हुए मनन-चिंतन और अनेक प्रकार के क्रियाकलाप करते हुए जीवन-यापन करते हैं। रचनाकार भी उपर्युक्त गतिविधियों से प्रभावित होता है

और कालांतर में अपनी रचना से लोगों को प्रभावित करता है। लेकिन यह प्रभावोत्पादकता गहरी संवेदनात्मक अनुभूति के साथ, उसी में होती है जो कि अपने युग विशेष को ध्यान में रखते हुए भूत और भविष्य का दृष्टा भी होता है। इन बातों को ध्यान में रखककर लिखी गई रचना कालजयी होती है और उसमें स्थापित मूल्य हमें भविष्य में सदैव प्रेरणा देते रहते हैं। मनुष्य ही मूल्यों का निर्माता होता है और वह ही उसे तोड़ता भी है। ये मूल्य चाहे जीवन संबंधित हो या साहित्य संबंधित, समयानुसार बदलते रहते हैं। जीवन, प्रेम, जन्म, ब्याह, धर्म, शिशुरक्षा, कला, ज्ञान, क्रांति, अपराध, न्याय, युद्ध, ईश्वर और प्रकृति आदि सब संस्कृति के क्रियाकलाप हैं। संस्कृति की व्यापक व्याख्या में न जाकर जब मैं अपना ध्यान जायसी के काव्य की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ। जायसी मूलत: गाँव के कवि थे और कुछ समय तक दरबार में भी रहे इसलिए उनमें ग्रामीण एवं अभिजात्य दोनों संस्कृतियों का समन्वय दिखाई देता है। जिसमें उन्होंने अपने युग में अवध के समस्त मतों, विश्वासों, मान्यताओं, रुढ़ियों तथा अंध-विश्वासों तीज-त्यौहारों, वहाँ के निवासियों के सुखों-दुखों एवं उनकी पीड़ाओं खेत-खलिहानों ऋतुओं छप्पर-छाजन और मांगलिक कार्यों आदि का व्यापक एवं विस्तृत वर्णन किया है।

जायसी अकेले कवि हैं अपने युग की संस्कृति को उसकी यथार्थ समग्रता में आत्मसात करनेवाले ! रघुवंश ने अपनी पुस्तक 'जायसी एक नई दृष्टि' में लिखा है कि "युग की मूल्यहीनताओं, विकृतियों, विडंबनाओं एवं अतिरंजनाओं के अस्वीकार, खंडन, विरोध के माध्यम से उन्होंने अपने काव्य में अपने युग के सामने मानवीय मूल्यों के मार्ग का अनुसंधान अथवा अभिव्यक्ति नहीं की, जैसा कि अन्य उनके साथ के कवियों ने किया। जायसी ने अपने काव्य में युग की परिस्थिति को सामाजिक, धार्मिक, सांप्रदायिक दार्शनिक सभी पक्षों एवं स्तरों पर ग्रहण किया है। उन्होंने अपने युग यथार्थ को संपूर्णता में ग्रहण किया है और बिना किसी विरोध भाव के किसी स्वीकार-अस्वीकार अथवा खंडन-मंडन के उसके बीच केंद्रीय मानवीय दृष्टि प्रेम तत्व का अनुसंधान काव्याभिव्यक्ति में किया है। इस रचना के स्तर पर कवि जायसी मत, संप्रदाय, धर्म सिद्धांत आदि सभी संदर्भों के बीच सहज भाव से मुक्त रह सके हैं। जायसी ने पद्मावत में अपने युग के पूरे परिवेश को दो स्तरों पर ग्रहण किया है एक ओर इतिहास का यथार्थ अपनी समस्त विडंबनाओं और मूल्यहीनताओं के साथ प्रस्तुत हुआ है तो दूसरी ओर कवि ने एक ऐसे कल्पना लोक का सर्जन किया है जिसके अंतर्गत व्यापक सांस्कृतिक मूल्य दिखाई देते हैं।

कबीर की रचना दृष्टि प्रखर और दूध-का-दूध और पानी-का-पानी के अलगाव में विश्वास रखती थी। लेकिन कबीर ने अपने काव्य में जीवन सांस्कृतिक मूल्यों को उसकी संपूर्णता में ग्रहण नहीं कियां सूर की रचना दृष्टि मानव जीवन की संपूर्णता में व्यक्त हुई है और तुलसी की दृष्टि समन्वयवादी रही है। यहीं पर जायसी की रचनादृष्टि धर्म और मूल्य

446 HRD/2000—5

की अवधारणा के संबंध में विशिष्ट रही है क्योंकि वे सूफी संप्रदाय तथा उसकी धर्मदृष्टि को व्यापक रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन साथ ही मुसलमान होते हुए भी हिंदू सांस्कृतिक मूल्यों की बड़ी पैनी दृष्टि से विवेचना भी करते हैं।

'प्रेम' सांस्कृतिक मूल्य की आत्मा है, जिसके सहारे हम समस्त कार्य-व्यापार को संपन्न करते हैं। जीवन की सार्थकता प्रेम में ही निहित है। इसी के बल पर कबीर हिंदू और मुसलमानों के अपने हो गए। जायसी ने प्रेम का सहारा लेकर दोनों के घावों पर ऐसा मलहम लगाया कि वह शीतलता ही प्रदान करता गया और दोनों अपने-अपने घावों को भूलकर एक दूसरे के सुख-दुख की खोज खबर लेने लगे। सूर-तुलसी ने प्रेम का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया कि आज पाँच छह सौ वर्षों के बाद भी हमारे लिए प्रासंगिक बने हैं। कालांतर में वही प्रेम स्वामी विवेकानंद, गाँधी, मदर टेरेसा और बाबा आम्टे में विस्तार पाता गया, जिसने कि समस्त मानवता को प्रभावित किया। प्रेम मानव को महामानव बना देता है। जायसी कहते हैं मनुष्य प्रेम, भयउ बैकुंठी। नाहिं त काह छार एक मूंठी। प्रेम जीवन का सर्वोत्कृष्ट तत्व और मानव-मंगल का मूल है। हमें चाहिए हम जायसी के काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों की तलाश में आध्यात्मिक प्रेम का जिक्र न करके मात्र लौकिक प्रेम की चर्चा करें तो प्रेम के वास्तविक रूप को सही ढंग से परख सकेंगे डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि 'इश्क हकीकी' की बात जाने भी दे तो लौकिक तथा मानवीय भूमि पर भी जायसी द्वारा चित्रित प्रेम किसी प्रकार के इश्क हकीकी से कम नहीं है।

लौकिक प्रेम का आधार है, विश्वास, न्याय, सत्य, ईमानदारी और निष्ठा ! 'बोहित खंड' में सत्य के साथ कवि ने कर्म की पवित्रता, सत्य की निष्ठा तथा नियम के अनुशासन को भी मानव के धार्मिक सांस्कृतिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया है।

नागमती वियोग-खंड के माध्यम से जायसी ने अवध के गाँवों की समस्त सांस्कृतिक परंपराओं और मूल्यों को बारहमासा के माध्यम से व्यक्त किया है जिसमें वहाँ के तीज-त्यौहार आदि का सुंदर वर्णन मिलता है--सावन महीने में नागपंचमी और फागुन में होली के माध्यम से नागमती की विरह-व्यथा का सजीव चित्रण किया गया है।

लोकजीवन के हर्ष-उल्लास, अवसाद तथा विषाद तथा कार्य-व्यापार का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन जायसी ने दिया है जो कि हमारे लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।

जायसी गांव के सुख-दुख से भलीभांति परिचित थे। पति के न होने पर घर गृहस्थी की चिंता जिस प्रकार नागमती को होती है उसी प्रकार की चिंता आज भी गाँव में रहने वाली उन बहुत-सी पत्नियों को होती है जिनके पति परदेश में हैं। पहले तो यह समस्या संयुक्त परिवार के कारण उतनी नहीं थी जितनी कि आज है, क्योंकि अब परिवार का दायरा सीमित होता जा रहा है। इस प्रकार पति के परदेस चले जाने पर घर की संपूर्ण जिम्मेदारियों का भार पत्नी को ही उठाना पड़ता है। बरसै मेघचुवहिं नैनाहा। छपर-छपर होइ बिनु नाहा।।

यहाँ सामंती समाज की नारी को जायसी सामान्य नारी की भूमि पर उतारते हैं और वर्षभर बारहमासा से गुजारते हुए अवध के गांवों की संपूर्ण सांस्कृतिक गतिविधियों से ारा परिचय कराते हैं। लोक संस्कृति का अनूठा चित्रण जायसी ने 'मानसरोदक' खंड में या है जहाँ पर पद्मावती ससुराल के भय से मायके में खूब आनंद मना लेना चाहती है।

कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल।
आयु आयु कहैं हौइहिं परब पंखि जस डेल।।

युक्त प्रसंग में जायसी ने 'पद्मावती' के मनोभावनाओं का चित्रण न करके अवध की तमाम नवयुवतियों के भावों का वर्णन किया है जो कि ससुराल के आतंक से आतंकित ती हैं।

इसी प्रकार जायसी ने पद्मावती के जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त कार्य-व्यापारों अवध की लोक संस्कृति का ही वर्णन किया है। विवाह के समय रानी का शृंगार करते य उसकी सहेलियों द्वारा ठिठोली करना एवं मंडप में ले जाना बारातियों के साथ किया आचरण एवं दहेज आदि देना ये सारी बातें पढ़ते समय वहाँ की संस्कृति मन-मस्तिष्क छा जाती है। पदमावती और रानी नागमती की अपने पति के प्रति निष्ठा एवं अनुराध तीय परंपरा में पति देवो भव: की उक्ति को अक्षरश: प्रमाधित करती है। आज भले ही यों में परिवर्तन के कारण उक्त भावों में कमी आ गई है लेकिन यह तत्कालीन युग का य है। इसी प्रकार पद्मावत में आचार-विचार एवं पव्यवहार के अनेकों सूत्र बिखरे पड़े जो कि वहाँ की संस्कृति को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। जायसी ने अवध की संस्कृति जातीय संस्कृति से जोड़ा यहाँ कहने का आशय यह है उसमें बहुत सारे ऐसे तत्व हैं कि गोवा, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि राज्यों में भी पाए जाते हैं। यह एक ऐसा तेंतु जो कि विभिन्न सुगंध वाले पुष्पों को जोड़ते हुए सबके साथ समरसता स्थापित करता है।

मध्यकालीन ग्रामीण सांस्कृतिक बोध की झलक कबीर, सूर, तुलसी और जायसी में विध रूपों में मिलती है। पद्मावत में अभिव्यक्त लोकोत्सव तत्कालीन समाज की झलक तुत करते हैं 'रत्नसेन-पद्मावती विवाह खंड में लगन से लेकर विवाह संपन्न होने तक संपूर्ण कार्यों का बड़ा सुंदर वर्णन मिलता है।

लगन धरा औ रचा बियाहू। सिंघल नेवत फिरा सब काहू।।
बाजन बाजे कोटि पचासा। भा अनंद सगरौं कैलासा।।

मध्यकालीन समाज में व्यक्त उन तमाम सांस्कृतिक रूढ़ियों जैसे सती एवं जौहर प्रथम न-अपशकुन, टोना-टटका जादू आदि का उल्लेख मिलता है। जोगी खंड के आरंभ में तिषी रत्नसेन को टोकते हैं।

जायसी के पद्मावत में सांस्कृतिक मूल्यों की विशद चर्चा उनके कथा के दोनों आयामों ी लोक-जीवन और आभिजात्य जीवन के स्तर पर व्यापक रूप से हुई है जिसकी विवेचना

के भी बहुत सारे आयाम हैं। यहां उनके काव्य में सांस्कृतिक मूल्य के अंतर्गत निहित उनकी मानवीय करुणा की दृष्टि का उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा !

जायसी आशावादी आनंदवादी, आस्थावादी तथा मानवतावादी पुरुष थे। मानव मात्र की मंगल कामना उनके जीवन तथा काव्य का मूलमंत्र था। मानव सेवा को वे जीवन का परमलक्ष्य समझते थे। जायसी निर्गुण के उपासक थे। इस तत्वदर्शन का मूल स्रोत वेदांत का अद्वैत है। अद्वैत में द्वैत अथवा भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं, उनके साहित्य का मूल मंत्र है–

जायसी के प्रेम दर्शन में सार्वभौम सत्य, सांप्रदायिक सद्भाव तथा सांस्कृतिक समन्वय पूर्ण रूप में हुआ है। इनके दर्शन में भारतीय स्रोत तथा श्रवण परंपराओं, सूफी आस्थाओं और इस्लाम की मान्यताओं का मेल हुआ है जिसमें वेदांत के अद्वैतवाद, बौद्धों की करुणा, जेनों की अहिंसा और नाथपंथियों की नैतिकता आदि का समावेश हैं, जो हमारे सांस्कृतिक धरोहर के अभिन्न अंग हैं। जायसी एक जननायक थे, इसलिए जन की बात को उन्होंने जन की भाषा में व्यक्त किया क्योंकि भाषा का संबंध संस्कृति से अभिन्न रूप से होता हैं अवध की संस्कृति के पारखी जायसी ने अपने काव्य की भाषा ठेठ अवधी को चुना। संप्रेषणीयता के महत्व को भलीभांति समझ रहे थे अन्यथा वे फारसी या उर्दू में भी पद्मावत की रचना कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया इसके पीछे उनकी कुशल रचनादृष्टि के साथ भाषा दृष्टि भी कार्य कर रही थी। जायसी ने भाषा को अलंकारों, लोकोक्तियों, गुणों और रसों आदि से इस प्रकार सजाया कि अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न रह जाए। फारसी एवं लखनवी शैली पर आधारित काव्य भाषा कालांतर में तुलसी के लिए प्रेरणा स्रोत बनी।

अंततः हम कह सकते हैं के जायसी ने अपने काव्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक मूल्यों में उस प्रेम दर्शन की बात की जिसका संबंध वर्तमान राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में भी आंका जा सकता है। संकीर्ण सांप्रदायिकता, आतंक, हत्या, हिंसा, भौतिकता, धनलोभ, पदलोभ, जातीयवर्ण भावना और मूल्यहीनता आदि के माहौल में जायसी के प्रेम दर्शन की आवश्यकता महसूस हो रही है ताकि हम इस कीचड़ से निकलकर राहत की सांस ले सके। भौतिकता की अंधी दौड़ में हमारी सांस्कृतिक चेतनता क्षीण होती जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि इसे हम जल्दी सोचे-समझें और जाने, अन्यथा बहुत देर हो जाएगी और सारी मानवता के समक्ष चीत्कार के अलावा और कुछ भी शेष नहीं बचेगा।